अलग-अलग मिज़ाज की किताबें उर्फ़ विधाओं की विधा

प्रभात

साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्य के बिना सभ्यता का अर्थ नहीं, साहित्य मानव मात्र की अभिलाषा, जिजीविषा का प्रतिबिम्ब है, वग़ैरह बातें आमतौर पर कही-सुनी या लिखी-पढ़ी जाती हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि पूरा समाज साहित्यहीनता की जकड़ में है।

स्कूलों के स्तर पर शुरू होने वाली साहित्य की यह उपेक्षा ताउम्र बनी रही आती है। स्कूल और पुस्तकालय जो इस दिशा में सचमुच कोई बदलावकारी काम कर सकते थे उनपर नज़र डालें तो वहाँ उजाड़ ही दिखाई देता है। बड़ों के साहित्य में फिर भी थोड़ी बहुत हलचल है पर बाल साहित्य के नाम पर अभी भी हमारा हाथ और दिल तंग ही है। साहित्यहीनता की इस चिन्ता में लेखन, प्रकाशन और रुचियों सहित, साहित्य की विधाओं की पड़ताल करता प्रभात का यह लेख। सं.

लगभग बीस साल पहले प्रोफेसर कृष्ण कुमार ने लिखा था, "साक्षर समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा आज साहित्य के सम्पर्क के बग़ैर जी रहा है। और यह भी कोई नहीं कह सकता कि इस हिस्से के सदस्य किसी मौखिक परम्परा से जुड़े हैं। साहित्य जिनकी ज़रूरत है, है और ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं। शेष में इस बात का भी अहसास नहीं है कि वे वंचित हैं, न ही वे अपरिचय के बावजूद साहित्य के सम्मानी हैं। साहित्य एक सिमटी हुई दुनिया का रस है और जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, यह दुनिया और सिमट रही है, जो कि लाज़िमी है क्योंकि साहित्यहीनता की दुनिया फैल रही है।"



'साहित्य एक सिमटी हुई दुनिया का रस है।' यह आज भी उतनी ही बड़ी वास्तविकता है बल्कि अब तो यह और तीव्रता से महसूस होता है कि 'साहित्यहीनता की दुनिया फैल रही है।'

स्कूल और पुस्तकालय, दो ऐसी आधुनिक व्यवस्थाएँ हैं जो साहित्यहीनता के उजाड़ से जूझने में मददगार हो सकती हैं। पुस्तकालयों में बाल साहित्य की विधाओं की बहुलता को बढ़ाना और स्कूलों में बाल साहित्य के लिए जगह बनाना कारगर क़दम साबित हो सकते हैं।

हमारे यहाँ हिन्दी में बड़ों के साहित्य में अलग-अलग विधाओं में जितना काम हुआ है,





बच्चों के साहित्य में भी उतना ही खोजेंगे तो वह नहीं मिलेगा। हिन्दी में बच्चों के लिए लेखन को उतनी गम्भीरता से नहीं लिया गया। कविता की तो फिर भी एक परम्परा हिन्दी में दिखाई देती है लेकिन कहानी में वैसी स्थिति नहीं है। नाटक में भी नहीं। यूँ छापने को प्रकाशकों ने अपना उद्योग चलाने के लिए कूड़ा-करकट बहुत छापा है, लेकिन जिसे बच्चों के लिए साहित्य के रूप में सहेजना चाहें वैसा कम ही देखने में आता है। उपन्यास की ही बात करें तो हिन्दी में *एक डर पाँच निडर*, *अनारको के आठ दिन*, *नाचघर* जैसे दो-तीन उदाहरण और याद आ सकते हैं। पत्र विधा में *पिता के पत्र पुत्री के नाम* के बाद कोई किताब याद नहीं आती। अगर बच्चों के लिए संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, यात्रा वृत्तान्त इत्यादि विधाओं की कुछ अच्छी किताबें खोजने निकलेंगे तो बहुत आशा नहीं बँधेगी। लेकिन अगर हम बच्चों में साहित्य के प्रति रुझान विकसित करना चाहते हैं, उन्हें साहित्य में रस लेना सिखाना चाहते हैं और उन्हें ऐसे पाठक के तौर पर बढ़ते हुए देखना चाहते हैं जो पुस्तकालय में अपनी ज़रूरत और सुरुचि के अनुरूप किताबें खोज-खोज कर पढ़ें, तो हमें उन्हें साहित्य का एक समृद्ध संसार देना ही होगा। हम देखते ही हैं कि किसी बच्चे की विज्ञान में गहरी रुचि होती है लेकिन साहित्य में नहीं होती। किसी की गणित में ज़्यादा रुचि होती है लेकिन संगीत में नहीं। किसी की साहित्य में तो गहरी रुचि होती है लेकिन दस्तकारी में बिलकुल नहीं होती। वहीं किसी की साहित्य, संगीत, विज्ञान, चित्रकला, सिनेमा इत्यादि सबमें रुचि हो सकती है। बच्चों की रुचियाँ बदलती भी रहती हैं। ऐसे में अलग-अलग मिज़ाज वाले बच्चों के लिए हम पुस्तकालय संग्रह में अलग-अलग मिज़ाज की सुरुचिपूर्ण किताबें रख सकें तभी हम कह सकेंगे कि किताबों की एक समृद्ध दुनिया हम बच्चों को दे पा रहे हैं। फिलहाल हिन्दी पट्टी के पुस्तकालयों की समस्या यही है कि बच्चों की रुचियों का क्षेत्र जितना विस्तृत है या हो सकता है उसकी तुलना में बच्चों के

लिए किताबों की विषयवस्तु का क्षेत्र बहुत ही सीमित है। हमारे यहाँ बच्चों के लिए जीवनियों, आत्मकथाओं, इतिहास, संगीत, चित्रकला, पर्यावरण, सिनेमा आदि अनेकानेक विषयों पर उम्दा किताबों का ख़ासा अभाव है। इस अभाव को लेखकों की बच्चों के लिए लिखने की इच्छाशक्ति और प्रकाशकों का दृष्टिपूर्ण रवैया काफ़ी हद तक दूर कर सकता है। बीते दशक में बच्चों के लिए छपी किताबों पर एक नज़र डालें तो लगता है कि कुछ बेहतर शुरुआत हुई तो है।

लेखन और प्रकाशन के स्तर पर पुस्तकालय संग्रह को समृद्ध बनाने की दिशा में जितना काम करने की ज़रूरत है, उतनी ही ज़रूरत किताबों में बच्चों की रुचि के निर्माण की भी है। बच्चों के लिए केवल किताबें उपलब्ध करा देना भर पर्याप्त नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे हिन्दी भाषा की पाठ्यपुस्तक के रूप में एनसीईआरटी की *रिमझिम* जैसी ऐतिहासिक रूप से बेहतरीन पाठ्यपुस्तक उपलब्ध करवा देना भर पर्याप्त नहीं है। उसपर उतने ही सुरुचिपूर्ण ढंग से पठन-पाठन का काम करवाने में समर्थ भाषा रसिक शिक्षकों की भी ज़रूरत होगी, ऐसे ही पुस्तकालय की किताबों में रुचि का विकास करने के लिए किताबों में गहरी रुचि रखने वाले और किताबों की दुनिया को उम्मीद से देखने वाले लाइब्रेरियनों की भी ज़रूरत होगी।

जब शिक्षकों और लाइब्रेरियनों में अलग-अलग मिज़ाज की किताबों के प्रति सजगता होगी तभी वे बच्चों को संग्रह की इस विविधता के आस्वाद के बारे में कुछ बता सकेंगे और इससे सम्बन्धित कुछ गतिविधियाँ भी सोच सकेंगे। इसी ख़्याल से एक अवसर पर हमने शिक्षिकाओं के एक समूह के साथ विधाओं की समझ के लिए काम किया। हमने बोर्ड पर विधाओं का वर्गीकरण करते हुए एक ख़ाका खींचा–

साहित्य की मौखिक धारा की इतनी कम चर्चा होती है कि लगता है जैसे यह प्राचीन काल की कोई बात है, लेकिन वास्तव में यह सच नहीं है। कृषि युग में फली-फूली यह धारा औद्योगिक युग में क्षीण अवश्य पड़ी है लेकिन जहाँ-जहाँ कृषि युग बचा हुआ है वहाँ-वहाँ मौखिक परम्पराएँ भी बची हुई हैं। यह हमारी कम-नज़र है कि हम उधर देखते ही नहीं हैं। लेकिन गिजुभाई, विजयदान देथा, कोमल कोठारी, हबीब तनवीर, ए के रामानुजन जैसे कुछ लोगों ने देखने की कोशिश की तो उन्हें यह धारा दिखी। गीता रामानुजन जैसी व्यक्ति देखने की कोशिश करती हैं तो उन्हें आज भी यह दिख जाती है और वे पशु-पक्षियों और लोक की अनेक कथाएँ वहाँ से सहेज लाती हैं। वहीं

साहित्य की विधाएँ

मौखिक साहित्य				
कथा	काव्य	कथेतर	नाटक	अन्य
लोककथा	लोक कविता	मौखिक इतिहास	ख्याल	पहेलियाँ
लोकगाथा	लोक गीत	लोक विज्ञान	तमाशा	गुड्ड (मौखिक सवाल जवाब)
फेबल	लोक खेलगीत	औषधीय ज्ञान	नौटंकी	कहावतें
परीकथाएँ	तुकबन्दियाँ	मौसम विज्ञान	राम लीला	
किस्से	लोकगाथा	कृषि विज्ञान	रास लीला	
किंवदंतियाँ				
मिथक कथाएँ				

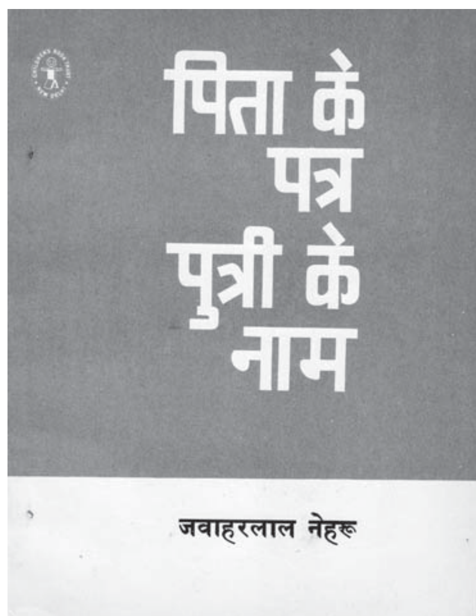
लिखित साहित्य				
कथा	काव्य	कथेतर	नाटक	अन्य
कहानी	कविता	आत्मकथा	नाटक	पत्रिकाएँ
उपन्यास	गीत	जीवनी	एकांकी	स्तरानुसार किताबें
चित्र कहानी	खेल गीत	संस्मरण		
शब्द रहित चित्र कहानी	खण्ड काव्य	डायरी		
	महाकाव्य	रिपोर्ताज		
	गज़ल	पत्र		
	लोरी	रेखाचित्र		
	शिशु गीत	निबन्ध		
		यात्रा वृत्तान्त		
		अवधारणा आधारित किताबें		
		गतिविधियाँ		
		ज्ञान के विविध अनुशासनों पर आधारित किताबें		

मदन मीना जैसे कुछ व्यक्ति गाथाएँ खोज लाते हैं। मौखिक परम्परा में आज भी बच्चों के लिए गीत, खेलगीत, पहेलियाँ आदि स्थानीय भाषाओं में मौजूद हैं, और इस साहित्य को सहेजने का ऐतिहासिक दायित्व अब हम पर आ चुका है।

लिखित साहित्य की धाराओं जैसे– कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि की पहचान में कोई विशेष समस्या अकसर नहीं आती है। कथेतर विधाओं के बारे में हमें थोड़ा देखने और जानने की ज़रूरत पड़ती है कि संस्मरण, जीवनी से कैसे अलग हैं। कि संस्मरण असल में किसी के साथ बिताए कुछ समय की स्मृति हैं। यात्रा वृत्तान्त भी किन्हीं स्थान या स्थानों के साथ बिताए गए समय की स्मृति ही होते हैं लेकिन वह स्मृति यात्रा पर केन्द्रित है, और उसमें यात्रा के वर्णन की प्रमुखता रहती है। रिपोर्ताज अख़बारी रपट नहीं है, भले ही यह विधा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अख़बारों के लिए युद्ध की रपटें भेजने की प्रक्रिया में ही विकसित हुई।

रेखाचित्र विधा के बारे में लगता है कि वह हिन्दी में महादेवी वर्मा के साथ जन्मी और उन्हीं के साथ ख़त्म भी हो गई। इस विधा में आगे और कोई उल्लेखनीय काम नहीं हो सका। महादेवी वर्मा को जीव-जन्तुओं से गहरा लगाव था। *गिल्लू गिलहरी, गौरा गाय* आदि के रेखाचित्र उन्होंने लिखे। महादेवी वर्मा ने संस्मरणों की किताब *अतीत के चलचित्र* लिखी। उनके संस्मरण और रेखाचित्र पढ़ने के बाद यही समझ में आता है कि रेखाचित्र में शब्दों के माध्यम से पात्र का चित्र खींच देने पर ज़ोर रहता है। बल्कि ऐसा कहें तो यह बिलकुल भी ज़्यादा कहना नहीं होगा कि जैसे चित्रकार रेखाओं के माध्यम से किसी चित्र को आकार देते हुए जीवन्त करता है, ऐसे ही साहित्य में रेखाचित्र लिखने वाला शब्दों के माध्यम से पात्र के चित्र को साकार करते हुए जीवन्त कर देता है।

निजी तौर पर मुझे 'डायरी' साहित्य की सबसे कठिन विधा लगती है। डायरी ऐसा रोज़नामचा भर नहीं है जिसमें आज मैंने ये किया, वो किया, यहाँ नाचा, वहाँ कूदा जैसी सूचनाएँ भर दी जाएँ। डायरी असल में ख़ुद से संवाद की विधा है। आत्मसाक्षात्कार की विधा है। हालाँकि कुछ लोग डायरी में तमाम रोया-पुकारी, काटा-फाँसी की अभिव्यक्ति को भी वाज़िब मानते हैं। लेकिन डायरी साहित्यिक विधा तो एक साहित्यिक की डायरी जैसी लिखी जाकर ही हो सकती है, जिसे पढ़कर लेखक के आत्मसंघर्ष और जीवन की सच्चाइयों का साक्षात्कार किया जा सके। डायरी सच लिखने की विधा है और सच लिखना ख़ासा कठिन है। अपने ही सच का सामना करना ख़ासा कठिन है। डायरी में अगर व्यक्ति कुछ सच लिखे मगर कुछ सच छिपाए, तो वह डायरी ही क्या हुई? अपनी भीतरी और बाहरी, सुखद और दुखद उलझनों को सुलझाते हुए डायरी का एक जो उद्‌देश्य हो सकता है, आत्मविकास, वह सच्चाई को छिपाकर प्राप्त नहीं किया जा सकता।



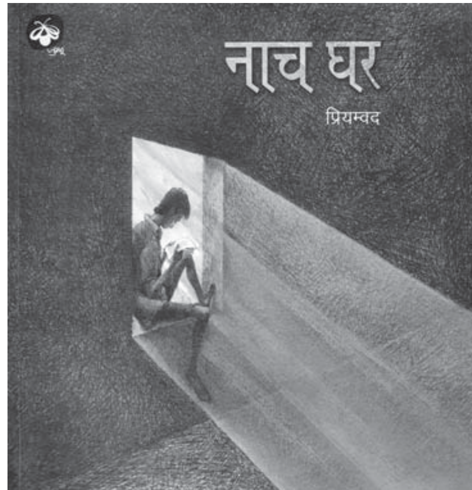
साक्षात्कार या इंटरव्यू ऐसी विधा है जिसमें आप सामने वाले के पास अपने सवाल लेकर जाते हैं और उन सवालों पर सामने वाले के जवाब सुनकर या लिखकर लाते हैं। मैंने एक बार बच्चों की एक पत्रिका के लिए एक व्यक्ति से एक कुत्ते का साक्षात्कार करके लाने के लिए कहा। वह व्यक्ति कुत्ते का बड़ा ही दिलचस्प साक्षात्कार लिखकर लाया। कुत्ते की तरफ़ से उसने बड़े ही रोचक जवाब लिखे। अब इसे कुत्ते का साक्षात्कार तो कह सकते हैं लेकिन साक्षात्कार नाम की कथेतर विधा में इसे नहीं रख सकते क्योंकि इसमें कुत्ते की ओर से जो जवाब सोचे गए थे वे काल्पनिक थे। जबकि मान लीजिए आपने किसी अभिनेत्री का साक्षात्कार लिया। मान लीजिए आपने शबाना आज़मी का साक्षात्कार लिया। उन्होंने आपके सवालों के जो जवाब दिए उन्हें आप लिखकर लाए तो यह साक्षात्कार विधा के तहत रखी जाने वाली रचना होगी।

उपन्यास और कहानी में भी जीवन की कहानी होती है और आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, यात्रा वृत्तान्त आदि में भी जीवन की कहानी होती है। फिर उपन्यास और कहानी को कथा व आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण आदि को कथेतर क्यों कहते हैं? यह एक सवाल अकसर आता है। कथा में जीवन की सच्चाई होती है जबकि कथेतर में सच्चा जीवन होता है। इस बारीक़ से अन्तर के कारण उपन्यास और कहानी को कथा में व आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण आदि को कथेतर में शुमार करते हैं।

कथाएँ कल्पना का सहारा लेकर जीवन की सच्चाइयों को अभिव्यक्त करती हैं, जबकि कथेतर विधाएँ कल्पना का सहारा नहीं लेतीं। वे जीवन के सत्यों और तथ्यों को प्रमुखता से रखती हैं। सत्य और तथ्य ही दो बीज शब्द हैं जो कथेतर को कथा से इतर यानी अलग करते हैं। उदाहरण के लिए, प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' में कल्पना के सहारे बुने गए चरित्रों- हामिद और अमीना के माध्यम से कहानी कही गई है। लेकिन *सत्य के साथ मेरे प्रयोग* इसीलिए

कथेतर है कि उसमें गाँधी के बारे में काल्पनिक कुछ भी नहीं है। उसमें गाँधी के जीवन के सत्य और तथ्य हैं। 'ईदगाह' में जहाँ जीवन की सच्चाई है, तो *सत्य के साथ मेरे प्रयोग* में सच्चा जीवन है। कथेतर कथाएँ व्यक्तियों की भी हो सकती हैं, और किसी नदी या साइकिल की भी। साहित्य के इन विविध रूपों पर विस्तृत चर्चा के बाद हमने मान लिया कि शिक्षिकाओं को विधाओं की विद्या आ गई है।

एक शिक्षिका ने शनिवार को विधाओं की विद्या सीखी तो सोमवार को स्कूल में जाकर बच्चों को पुस्तकालय में ले जाकर विधाओं की विद्या सिखाने पर काम शुरू कर दिया। चौथी-पाँचवी के बच्चे थे। पुस्तकालय उन्होंने पहली बार ही देखा था। बस्ते से अलग तरह की किताबों के बीच एकाएक ख़ुद को पाकर कुछ तो शरमा रहे थे, कुछ ख़ासे चुप हो गए थे, वहीं कुछ की आँखें फटी-की-फटी रह गईं कि ''हैंअअऽऽऽ? हमारे स्कूल में फूलों-सी रंगीन और ख़ुशबूदार किताबें हैं और हमें दिखाई ही नहीं गईं?''



शिक्षिका बोलीं, 'हमें आज इन किताबों का वर्गीकरण करना है।' बच्चों को लगा कि यह वर्गीकरण कोई ऑपरेशन जैसा काम है तभी तो कभी-कभार खुलने वाले इस कमरे में किया जा रहा है। वे डॉक्टर नहीं थे पर ऑपरेशन के लिए तैयार हो गए थे क्योंकि उन्हें ऐसा ही आदेश मिला था। सब एक साथ बोले, "जी मैम।"

"जो किताब तुम्हें कविता जैसी लगे उसे अलग कर दो, और जो कहानी जैसी लगें उन्हें अलग रखो। बड़े बच्चे छोटों की मदद करेंगे। आत्मकथा और जीवनियों को मिला मत देना, क्योंकि वे एक जैसी दिखाई देंगी। रिपोर्ताज का तो मुझे भी समझ में नहीं आ रहा कि किस किताब में मिलेंगे। हम मान लेते हैं कि हमारी लाइब्रेरी में रिपोर्ताज नहीं हैं। लेकिन नाटक तो हैं उन्हें अलग रखना है।" शिक्षिका कहती जा रही थीं और बच्चे समझ नहीं पा रहे थे कि क्या मिलाना है और क्या अलग करना है। वे किताबों को फटाफट हाथों में लेकर कभी इधर तो कभी उधर रख रहे थे। आसिफ़ बेला को अलग रखने के लिए किताबें दे रहा था और समीना चन्दर को। किताबों की अलग-अलग ढेरियाँ बन रही थीं, लेकिन शिक्षिका ने पाया कि बहुत देर हो गई है, भोजन की घण्टी लगने वाली है लेकिन विधाओं के वर्गीकरण की विद्या बच्चों को नहीं दी जा सकी है। वे बोलीं, "ऐसा करो। समय कम है। विधाओं के बारे में मैं जो समझ रही हूँ, तुम अभी नहीं समझ पा रहे हो। तुम तो फिलहाल ऐसा करो कि परियों की कहानियाँ अलग कर दो, राजा-रानी वाली अलग कर दो, और महापुरुषों की अलग कर दो।"

एक बच्चे ने पूछा, "मैडम, महापुरुष कौन— अर्जुन, द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह वग़ैरह।"

"अरे नहीं। वे अलग चीज़ हैं?" फिर कुछ सोचकर बोलीं, "वे नहीं होते, नेहरूजी, गाँधीजी, अम्बेडकर, वल्लभ भाई पटेल, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद आदि आज़ादी के समय में बहुत सारे हुए थे।"

"हाँ-हाँ मैडम, हम समझ गए। हमारे राजस्थान में भी तो कुछ लोग हुए थे, कालीबाई, नानाभाई खाँट, जिनका पाठ हमारी हिन्दी की किताब में है। लेकिन उनकी तो किताब है ही नहीं।" बच्चे ने कहा।

"नहीं है तो कोई बात नहीं। देखो अब समय बहुत हो गया। नहीं हो रहा तो सभी किताबों को पहले जहाँ रखी थीं, वैसे-के-वैसे वापस रख दो।" शिक्षिका कुछ निराशा से बोलीं।

शिक्षिका की ईमानदारी, लगन और उत्साह में कोई कमी नहीं थी लेकिन वे जो काम करना चाहती थीं उसे कर नहीं पाईं। इस विफलता ने उन्हें बेचैन कर दिया। कुछ दिनों बाद उन्होंने बच्चों को साहित्य की विधाओं से परिचित कराने का एक अपना ही तरीक़ा विकसित कर लिया। उन्होंने बच्चों से लेखन पर कुछ काम करवाए। एक काम के तहत उन्होंने बच्चों से कहा, "आज तुम सब अपने-अपने जीवन की कहानी लिखो। अपने और अपने परिवार, गाँव-शहर आदि के बारे में वे सच्ची घटनाएँ लिखो जो तुम्हारे जीवन में घटीं।" बच्चों के इस लेखन को प्रदर्शित करते हुए उन्होंने एक नाम दे दिया– आत्मकथा। अगले दिन उन्होंने बच्चों से कहा, "आज तुम अपने सबसे अच्छे दोस्त के जीवन के बारे में वैसे ही लिखो जैसे तुमने अपने बारे में लिखा था।" और उन रचनाओं को प्रदर्शित करते हुए उन्होंने नाम दिया– जीवनी। उसके अगले दिन उन्होंने बच्चों को अपने आसपास रहने वाले किसी बुज़ुर्ग या किसी स्त्री से गाँव का इतिहास जानने को लेकर वे क्या-क्या बातें पूछेंगे उन्हें लिख लेने को कहा। जब बच्चों ने सवाल लिख लिए तो उन्होंने बच्चों को उन बुज़ुर्ग लोगों के पास भेज दिया और कहा कि उनसे इन सवालों के जवाब पूछो और लिखकर लाओ। इन रचनाओं को प्रदर्शित करते हुए शिक्षिका ने लिखा– साक्षात्कार। इसी तरह से शिक्षिका ने पत्र, रिपोर्ताज आदि विधाओं से परिचित कराने के तरीक़े विकसित कर लिए। जहाँ चाह वहाँ राह।



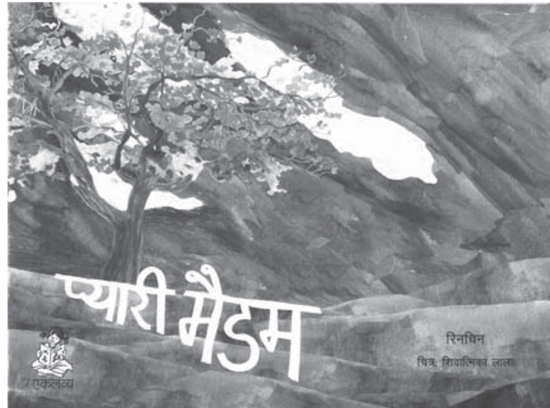
एक शहरी अजनबी को गड़रिए की गाडर में सभी भेड़ें एक जैसी दिखाई देती हैं, लेकिन गड़रिया जानता है कि भेड़ों के रेवड़ में राम दुलारी कहाँ चल रही है और फ़िरोज़ा कहाँ। कल्कि मेमना कहाँ छुपा है और अल्बर्ट भेड़ा कहाँ। बेहतरीन पाठक तो किताबों को दूर से देखकर ही बता देता है फलाँ किताब *महँगू की टाई* है और वह जो बड़ी-सी है, असल में *बिल्ली के बच्चे* है। बच्चे बेहतरीन पाठक होकर ही किताबों के वर्गीकरण के काम में बेहतर दिलचस्पी ले सकते हैं। इसलिए पुस्तकालय में किताबों का उम्दा संग्रह होना भर पर्याप्त नहीं है, बेहतर पाठक होना भी ज़रूरी है। किताबों को दूर से देखने मात्र से बेहतर पाठक नहीं बना जा सकता। इसके लिए तो किताबों को पढ़ना ही होगा, और किताबें बिना रुचि के पढ़ी नहीं जा सकतीं। किताबों में रुचि जगाने का काम भी लाइब्रेरियन के कई कामों में से एक है। इसके लिए आजकल नई चाल के पुस्तकालयों में बच्चों के साथ अनेक गतिविधियाँ की जाती हैं।

पुस्तकालय की किताबों का इस्तेमाल करते हुए हावभाव के साथ कविताएँ करवाना, गीत गाना, बातचीत करते हुए कहानी पढ़कर सुनाना (read aloud), किताब की झलक, ख़ज़ाने की खोज, किताब की चर्चा, किताब पर नाटक करना आदि कई गतिविधियाँ हैं जो पुस्तकालय में यदि नियमित की जाएँ तो बच्चे किताबों की ओर खिंचेंगे भी और उन्हें पढ़ेंगे भी।

जब बच्चों को पुस्तकालय की किताबें पढ़ने का तीन-चार साल का अनुभव हो जाए, और वे

बहुत सारी किताबें पढ़ चुके हों, तब कहीं मानना चाहिए कि बाल साहित्य के संसार से उनका आरम्भिक परिचय हुआ है।

इन गतिविधियों से गुज़रते हुए वे किताब के नाम के साथ-साथ लेखक, चित्रकार, अनुवादक, प्रकाशक आदि के नामों की ओर ध्यान देना शुरू कर देते हैं। किताब में कविता है कि कहानी, नाटक है कि जीवनी, इस तरह से वे देखने की शुरुआत करते हैं। तब अगर विधाओं के वर्गीकरण जैसा काम भी उनके साथ हो तो वे कुछ सहजता से इस काम में हिस्सा ले सकेंगे। तब यह जानकर उन्हें कुछ रोमांच भी हो सकता है कि कविता की किताबों के भीतर भी अलग-अलग तरह की कविताएँ हैं। उनमें कुछ तुकों वाली हैं तो कुछ बिना तुकों वाली भी। कुछ ऐसी जिनमें बोलकर पढ़ने में अच्छा लगता है, वहीं कुछ ऐसी हैं जिन्हें बड़ी आसानी से गाया जा सकता है। उन्हें यह जानना रोमांचित कर सकता है कि वर्णन की तरह लिखी हुई हर किताब का स्वाद एक जैसा नहीं है। जैसे कि सभी हरी सब्जियाँ भिण्डी नहीं हैं। उनका हरा तरह-तरह का हरा है। उनमें कोई लौकी है, कोई तुरई, कोई ग्वार की फली है तो कोई चौलाई की। इसी तरह किताब के छोटे-बड़े वर्णनों में किसी में कहानी छिपी है तो किसी में किसी की याद, किसी में विचार ही विचार हैं तो किसी में जानकारी ही जानकारी।



अगर बच्चों को वर्गीकरण के काम में भी कहानी पढ़ने, सिनेमा देखने या क्रिकेट खेलने जैसा ही आनन्द आए तो वर्गीकरण पर काम करना अच्छा, नहीं तो ख़राब। अच्छा इसलिए कि अब भाषा के विशिष्ट प्रयोगों को पहचानने की उनकी क्षमता विकसित हो रही है। और ख़राब इसलिए कि अगर वे ऊब रहे हैं, तो इस काम का क्या मतलब। इसका सीधा-सा मतलब यही है कि अभी उन्हें और समय चाहिए।

बच्चों के बनिस्बत शिक्षकों और लाइब्रेरियनों को विधा सजग और विधा रसिक होना चाहिए। बच्चों को यह सब समझने के लिए काफ़ी समय पड़ा है लेकिन शिक्षकों और लाइब्रेरियनों पर तो यह ज़िम्मेदारी आ गई है कि पुस्तकालय की सैकड़ों-हजारों किताबें पढ़कर वे अच्छी तरह यह समझ लें कि विधाओं का विभाजन अपने-आप में कोई बहुत स्पष्ट विभाजन नहीं है। विधाएँ एक-दूसरे में आवाजाही भी करती रहती हैं। पत्र शैली में कोई कहानी आपको लिखी हुई मिल सकती है, जैसे कि रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'स्त्री का पत्र'। *रामचरित मानस* का शिल्प कविता का है लेकिन वस्तुतः वह राम कथा है। कुछ लेखकों का गद्य इतना काव्यात्मक होता है कि पढ़ते हुए कविता का आस्वाद मिलता है।

विधाएँ कोई स्थिर चीज़ भी नहीं हैं। नए लेखक नई विधाएँ ईजाद कर देते हैं। कवि राजेश जोशी लिखते हैं, "किसी विधा में ऐसे विघटन सम्भव हो सकते हैं जिनसे न केवल उसका पूरा चरित्र बदल जाए बल्कि एक नई विधा भी जन्म ले सकती है। उद्योगीकरण ने जिस तरह महाकाव्य को विघटित कर दिया और उपन्यास जैसी विद्या का जन्म हुआ। प्रौद्योगिकी के कारण होने वाले बदलाव के क्या-क्या परिणाम होंगे, वह किस-किस तरह से अपने को व्यक्त करेगा, इसको देखने के लिए शायद सब्र की भी ज़रूरत

है और बहुत पैनी नज़र की भी।

मुझे लगता है इस बीच पाठकों की रुचि में बदलाव आया है, या आ रहा है। कहानी व उपन्यास के बनिस्बत अब संस्मरण, यात्रा वृत्तान्त, आत्मकथाओं या पुराने शहरों की गाथाओं के प्रति आकर्षण बढ़ा है। कथा से ज़्यादा कथेतर पर बात हो रही है। विधाएँ अपने बने बनाए खाँचों से बाहर आ रही हैं, या उनमें कसमसाती-सी प्रतीत हो रही हैं। कथेतर विधाओं में लेखन बढ़ रहा है। कई बार तो जिसे नॉस्टेल्जिया कहा जाता था, वह भी बढ़ता दिख रहा है। इन बदलावों के कोई कारण तो होने ही चाहिए। ये सारी विधाएँ कहीं-न-कहीं स्मृतियों पर आश्रित विधाएँ हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि सूचना और मेमॅरी बॉक्स के रिश्ते में हो रहे बदलाव के साथ ही, स्मृति और सृजनात्मकता का भी रिश्ता बदल रहा है!"

प्रिय कवि की यह टिप्पणी यह कहने को प्रेरित करती है कि मनुष्य जाति के लम्बे इतिहास में तमाम भाषाओं की मौखिक और लिखित परम्पराओं में साहित्य की विधाओं का उदय और अस्त होना चलता रहता है।

सन्दर्भ

कृष्ण कुमार, 2001, *स्कूल की हिन्दी,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 23 ।

राजेश जोशी, 'कवि की छोटी नोट बुक', *बनास जन,* अंक 34, जुलाई-दिसम्बर 2019।

प्रभात : शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र कार्य। दो कविता संग्रह *अपनों में नहीं रह पाने का गीत* साहित्य अकादमी, से व *जीवन के दिन* राजकमल से प्रकाशित। बच्चों के लिए कविता, कहानियों की कई किताबें प्रकाशित। विभिन्न लोक भाषाओं में बच्चों के लिए ढेर सारी किताबों का पुनर्लेखन-सम्पादन। 'युवा कविता समय सम्मान', 2012, सृजनात्मक साहित्य पुरस्कार, 2010, बिग लिटिल बुक अवार्ड- 2019।

सम्पर्क : prabhaaat@gmail.com